गान्धार-शैली

कुषाण कालीन कला के इतिहास में तीन नवीन कला-शैलियों का उदय हुआ। कुषाण राजा कनिष्क महायानी बौद्ध धर्म का अनुयायी था। इस महायानी शाखा ने कला के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व देन दी है। कुषाण काल से पूर्व भगवान बुद्ध की मूर्तियों के निर्माण का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। इस काल तक प्रतीकों के माध्यम से बुद्ध का स्मरण किया जाता था। किन्तु कुषाण कालीन राजाओं की छत्र-छाया में गान्धार-कला शैली का पर्याप्त विकास हुआ। गान्धारप्रदेश में ग्रीक (यवन) कलाकारों ने जिस शैली को अपनाया, वही गान्धार-शैली है। इस शैली के शिल्पकार ग्रीक थे, किन्तु उनकी कला का आधार भारतीय विषय, अभिप्राय और प्रतीक थे। इस प्रकार इस शैली का उदय समन्वय का परिणाम था। गान्धार प्रदेश भौगोलिक दृष्टि से ऐसा था, जहाँ भारतीय, चीनी, ईरानी और यूनानी तथा रोमन संस्कृतियों का संगम होता था। परिणामस्वरूप इस स्थान की कला पूर्व और पश्चिम के सम्मिश्रण के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। बी० एन० लूनिया इस शैली के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखते हैं कि—"गान्धार कला निस्सन्देह यूनानी कला या निश्चयात्मक यथार्थ रूप से रोमन साम्राज्य और एशिया माइनर की 'हैलेनिस्टिक' कला से उत्पन्न हुई। सरसरी तौर से देखने पर गान्धार कला का सम्बन्ध यूनानी कला से ही प्रतीत होता है। इसलिए यह कला 'हिन्दू-यूनानी' (Indo-Greek) या ग्रीको-रोमन कला (Greeco-Roman Art) के नाम से प्रख्यात है। गान्धार देश में विकसित होने के कारण इस कला का नाम उस प्रदेश के अनुकूल 'गान्धार-शैली' पड़ा। कभी-कभी इसे 'ग्रीको-बुद्धिस्ट' अथवा 'इण्डो-हैलेनिक' कला भी कहते हैं।"[1] वी० ए० स्मिथ भी इस शैली को 'ग्रीको-बुद्धिस्ट' या 'इण्डो-ग्रीक' कहते हैं। इस शैली में निर्मित अनेक मूर्तियाँ गान्धार-प्रदेश से लेकर काबुल और खुत्तन तक में उपलब्ध हुई हैं। इस शैली का सम्बन्ध प्राधान्येन कनिष्क से जोड़ा जाता है। वैसे इस शैली में गान्धार में ई० पू० द्वितीय शतक में ही मूर्तियों का निर्माण होने लगा था, किन्तु ग्रीक कलावन्तों द्वारा भारतीय विषय-सामग्री

को लेकर मूर्तियों के निर्माण का काल कनिष्क का राज्य काल है। अतः हम इस शैली का प्रसार काल ईसवी सन् ५० से २०० ई० के मध्य रख सकते हैं। इस शैली में निर्मित मूर्तियों के प्रधानतः प्राप्ति स्थल युसुफजई इलाके के शहरे बहलोल, जमालगढ़ी और तख्तेवाही आदि हैं।

यूनानी कलावन्तों की शैली का भारतीय प्रतिभा ने भारतीय विषयों को मूर्त्तिमान करने में प्रयोग किया है। इस शैली का प्रयोग बौद्ध धर्म और भारतीय अभिप्रायों को मूर्त करने में किया गया है, इस शैली की महान् देन **बुद्ध की प्रतिमा** का निर्माण है। इससे पूर्व जातक की कथाओं का अंकन होता था, यह बात साँची और भरहुत की पाषाण-वेष्टनियों पर अंकित कथा प्रसंगों से विदित होती है। इस समय भी बुद्ध के जीवन के चित्रण में प्रतीकों का ही सहारा लिया जाता था। बुद्ध जन्म के चित्रण के लिए कमल-पुष्प या सद्यः जात शिशु के चरण-चिन्ह चित्रित किये जाते थे। 'महाभिनिष्क्रमण' के चित्रण के लिए 'सवार-रहित अश्व के पुनरावर्त्तन को प्रतीक बनाया जाता था। बोधि-वृक्ष ज्ञान प्राप्ति का, धर्मचक्र-प्रथम धर्मोपदेश का, निर्वाण का प्रतीक स्तूप आदि बने थे। ये समस्त प्रतीक सांची, भरहुत और अजन्ता तक में देखे जा सकते हैं। ये प्रतीक इतने लोकप्रिय थे कि 'सांची के तोरण में बोधि-वृक्ष ७६ बार और स्तूप का ३८ बार तथा धर्मचक्र का १० बार उपयोग किया गया है।" किन्तु इन प्रतीकों से यह स्पष्ट है कि बुद्ध लोकप्रिय हो चुके थे, इसी लोक-प्रियता ने उनकी मूर्ति के अंकन की तीव्र ललक कलाकारों में पैदा की; फिर क्या था मथुरा और गांधार दोनों ही कलाओं में बुद्ध की मूर्ति का अंकन प्रारम्भ हो गया किन्तु एक बात और भी है कि गांधार में अंकित बुद्ध की मूर्ति का साम्य ग्रीक देव-ताओं से अधिक है भारतीय मानव से कम। सिर के झुकाव, अंग-विन्यास, वस्त्र विन्यास आदि सभी में यूनान की झलक अधिक है। मथुरा-शैली में निर्मित बुद्ध की मूर्तियों में प्राचीनतम 'कटरा बुद्ध' की मूर्ति है। यह आज राष्ट्रीय संग्रहालय में रखी हुई है। "गान्धार शैली के पूर्व युग में जातक कथाओं और बुद्ध सम्बन्धी अन्य कहा-नियों को पाषाण पर उत्कीर्ण तो किया जाता था, परन्तु स्वयं बुद्ध की प्रतिमा का प्रादुर्भाव अभी तक न हुआ था। कला में बुद्ध की उपस्थिति पद चिन्हों, बोधिवृक्ष, रिक्त-आसन अथवा छत्र आदि लक्षणों से सूचित की जाती थी। परन्तु अब तथागत बुद्ध की मूर्ति शिल्पियों का प्रिय विषय बन गई थी। बुद्ध और बोधिसत्वों की सुन्दर प्रतिमाएँ, ध्यान-मुद्रा, धर्म-चक्र-मुद्रा, अभय-मुद्रा, वरद-मुद्रा आदि में और बुद्ध की वर्तमान तथा पिछले जीवन की अनेक घटनायें एक प्रकार के काले पाषाण में अलौकिक ढंग से उत्कीर्ण की गईं। बुद्ध का जीवन इस शैली को प्रेरणा देने वाला उद्देश्य था। यथार्थ में गान्धार-शैली तथागत बुद्ध के जीवन और कार्यों की सजीव व्याख्या है।"[१] इस प्रकार निर्माण शैली यूनानी अवश्य थी किन्तु आत्मा इस शैली की **भारतीय** ही

थी। इस शैली का सर्वांग प्रयोग बौद्ध विश्वासों की अभिव्यक्ति में ही हुआ। गान्धार शैली के दो-चार उदाहरणों को छोड़कर कहीं भी यूनानी आदर्श, गाथा या यूनानी कला की अभिव्यक्ति नहीं होती है। इस प्रकार गान्धार शिल्पी के पास मूलतः यूनानी हाथ होते हुए भी उसका हृदय भारतीय था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन कलाकारों ने निश्चय ही यूनानी मूर्तिकला की यथार्थता और भारतीय कला की भावमय आध्यात्मिक अभिव्यंजना का समन्वय करने का अद्भुत प्रयास किया है और इस कार्य में उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। भारत के अतिरिक्त अन्य अनेक बौद्ध देशों—चीन, जापान, कोरिया आदि में यह शैली अधिक प्रसिद्ध हुई थी।

इस शैली के उपकरणों पर विचार करते समय हम देखते हैं कि इस काल में निर्मित समस्त मूर्तियाँ और दृश्य, पाषाण, महीन पीसे हुए चूने के और पकाई हुई मिट्टी से बनाये गये हैं, मूर्ति या मिट्टी से निर्मित दृश्य या खिलौनों को स्वर्णिम रंग से रंगकर अधिक सुन्दर बनाया जाता था। "·····इस शैली के जो नमूने सुरक्षित हैं वे तो पाषाण के हैं, परन्तु तक्षशिला में उत्खनन कार्यकर्त्ताओं ने, पाषाण प्रतिमाओं के अतिरिक्त चूने मसाले की अनेक और पकाई हुई मिट्टी की कुछ मूर्तियाँ प्राप्त की हैं।"[१] इस शैली की अधिकांश वस्तुयें तक्षशिला, पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी प्रदेश तथा अफगानिस्तान के अनेक प्राचीन स्थानों से उपलब्ध हुईं। इस शैली में निर्मित मूर्तियाँ बौद्ध स्थानों से प्राप्त हुईं। इस शैली में निर्मित अभी तक कोई ऐसी मूर्ति नहीं मिली है, जो ब्राह्मण अथवा जैन धर्म की अभिव्यक्ति हो, अपितु बौद्ध धर्म के अन्तर्गत भी "शाक्यमुनि गौतम, प्रव्रजित बुद्ध इस शैली और कला क्षेत्र के प्रधान नायक हैं। उन्हीं का जीवन, उन्हीं की आचरित घटनायें इसमें विशेषतः और केन्द्रतः रूपायित हुई हैं। बुद्ध की मूर्तियों की प्रधानता के अतिरिक्त इस शैली को बुद्ध की पहली मूर्ति कोरने का भी श्रेय है। इससे पहले की भारतीय परम्परा शैली में, भारतीय तक्षक द्वारा कोई बुद्ध मूर्ति उपलब्ध नहीं। लाहौर संग्रहालय की खड़ी **बोधिसत्व मूर्ति** अद्भुत सुन्दर है। शहरे बहलोल में मिली **कुबेर और हारीति की संयुक्त मूर्ति** भी दर्शनीय है। सित्की की खड़ी हारीति दोनों कन्धों पर एक-एक बालक धारण किये मातृ गौरव की असामान्य प्रतिमा है। इन्द्रशैल गुहा में समाधिस्थ बुद्ध शान्ति की प्रतिमा है और प्रसिद्ध तपस्वी गौतम की कायिक कृशता तप के फल को मूर्त्त करती है। बर्लिन संग्रहालय की ध्यानमग्न बुद्ध की मूर्ति भी अपनी शान्तमुद्रा के लिए विशेष ख्यातिलब्ध हुई। लाहौर संग्रहालय की सिंहासनस्थ खड्गधारी कुबेर की ऊँची मूर्ति भी इस यवन-भारतीय कला की अभिराम सन्धि प्रस्तुत करती है। इनके अर्धचित्रों (रिलीफ) के उभार और प्रगति में भी असाधारण बल है।····इस प्रकार की हजारों-लाखों मूर्तियाँ और पट्टिकाएँ बुद्ध के जीवन से आलोकित प्रस्तुत हुईं।"[२]

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम गान्धार-शैली की विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करेंगे—

१. गान्धार-शैली, शैली की दृष्टि से विदेशी होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है। इस शैली का प्रमुख लेख्य-विषय भगवान् बुद्ध तथा बोधिसत्व हैं।

२. गान्धार-शैली की आत्मा भारतीय होते हुए भी इस पर यूनानी (Hellenistic) प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसीलिए गौतम बुद्ध की अधिकांश मूर्तियाँ यूनानी देवता अपोलो (Appolo) तथा हरक्यूलिस (Hercules) से साम्य रखती हैं। बुद्ध के वस्त्र, मुख की आकृति ग्रीक या हैलिनिस्टिक हैं। यहाँ तक कि एक मूर्ति में गौतम बुद्ध को प्रसिद्ध यूनानी वृक्ष एकेन्थस की पत्तियों के मध्य सिंहासनारूढ़ दिखाया है।

३. गान्धार-शैली में निर्मित मूर्तियाँ भूरे रंग के प्रस्तर से निर्मित हैं। कुछ मूर्तियाँ काले स्लेटी पत्थर की भी हैं।

४. गान्धार-शैली की एक विशेषता यह भी है कि इसमें मानव-शरीर का यथार्थ अंकन है, शरीर की माँस-पेशियों के उतार-चढ़ाव बिल्कुल स्पष्ट हैं शरीर के अंगों का सूक्ष्म अंकन है, जबकि भारतीय-शैली में शारीरिक रेखाओं का गोलाकार अंकन किया जाता है।

५. गान्धार-कला की परिधान-शैली विशिष्ट है, मोटे वस्त्रों पर सलवटों का सूक्ष्म अंकन है, जबकि मथुरा शैली में शरीर का नग्न-प्रदर्शन है, शरीर के प्रत्येक उभार को मूर्त्त किया गया है।

६. गान्धार-शैली आभूषणों का प्रचुर प्रयोग करती है। बोधित्सवों की मूर्तियाँ आभूषणों से इतनी अधिक अलंकृत हैं कि एक बौद्ध भिक्षु की अपेक्षा वे यूनानी राजाओं की मूर्तियाँ बन जाती हैं। अनुपम नक्काशी, प्रचुर अलंकरण और प्रतीकों की भी इस शैली में अधिकता है। गान्धार कला में प्रभामण्डल की रचना की जाती है, परवर्ती भारतीय-कला में भी प्रभामण्डल का निर्माण होता रहा है। प्रभामण्डल की रचना भारतीय-कला को गान्धार-कला की एक विशिष्ट देन है।

७. मूर्तियों में बना प्रभाचक्र (Halow), साज-सज्जा, अलंकरण से रहित है जबकि मथुरा शैली में इसे अलंकृत किया गया है।

गान्धार-शैली कला की उत्कृष्टता की सूचक है, इसकी शैली एवं सामग्री का समन्वय इसके विकास का कारण है। विदेशी विद्वान् इस शैली को भारत की श्रेष्ठतम शैली मानते हैं किन्तु भारतीय-कला के आलोचक इस मत को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। वे इस शैली को **अनुकृति की बिडम्बना मात्र**, अथवा **एक महान पतनोन्मुख कला की लचर प्रतिलिपि** घोषित करते हुए इसे मौलिकता से रहित, हेय कोटि की कला कहते हैं। डा० नीहार रंजन रे, कुमार स्वामी एवं पर्सी ब्राउन इस शैली में कला एवं सत्य का अभाव प्राप्त करते हैं। प्रोफेसर आनन्दकुमार स्वामी ने लिखा

है कि "पश्चिमी रूपों का समस्त परवर्ती भारतीय तथा चीनी बौद्ध-कला पर प्रभाव सुस्पष्ट रूप से खोजा जा सकता है, परन्तु गान्धार की वास्तविक कला निगूढ़ मिथ्यात्व का आभास देती है, क्योंकि बोधिसत्वों की सन्तोषपूर्ण अभिव्यक्ति और आडम्बरपूर्ण वेश-भूषा तथा बुद्ध की स्त्रैण और निर्जीव मुद्रायें बौद्ध विचारधारा की आध्यात्मिकता को व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ हैं।[1]"

इसी प्रकार डा० नीहार रंजन रे ने इन गान्धार मूर्तियों में वास्तविकता का अभाव अनुभव करते हुए लिखा है कि इन मूर्तियों को देखकर ऐसा लगता है कि ये किसी सिद्धहस्त कलाकार की कृति न होकर मशीन से निर्मित हैं।[2]

पर्सी ब्राउन के अनुसार गान्धार शैली के मूर्तिकार सामान्य स्तर के कलाकार थे, उनमें कलात्मक रुचि का अभाव था। इसीलिए भारतीय मथुरा-शैली को यह कला प्रभावित न कर सकी; परिणामतः वह भारत की अपेक्षा अन्य देशों में पल्लवित तथा लोकप्रिय हुई। भारत इसका प्रधान क्षेत्र न बन सका।

मथुरा-शैली

मथुरा प्राचीन काल से ही भारत की प्रसिद्ध नगरी रही है; मथुरा महातीर्थ, व्यापारिक केन्द्र तथा कुषाणों की राजधानी होने के कारण ईसा की प्रथम शताब्दी से ही कला का एक महान् केन्द्र था। शुंगकाल में ही मथुरा में भरहुत की लोकव्यापिनी कला, सांची की विशिष्ट-शैली दोनों ही साथ-साथ चल रही थीं। कुषाण काल में आकर दोनों ही शैलियाँ एक हो गईं और प्राचीनकाल का चपटापन दूर हो गया, किन्तु भरहुत के लेख्य विषय तथा अलंकार प्रियता यहाँ बनी रही। मथुरा से इस काल की असंख्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों में विविधता है। ये समस्त मूर्तियाँ

सफेद चित्ती वाले लाल रवादार पत्थर की हैं। इस काल की एक प्रतिनिधि मूर्ति का परिचय यहाँ अपेक्षित है। यह मूर्ति भारतीय कला का श्रेष्ठतम उदाहरण है। यह चित्तीदार लाल प्रस्तर की एक **नारी-मूर्ति** है। इस नारी मूर्ति के पीछे एक ३८½" ऊँचा स्तम्भ है। नारी मूर्ति का मुखमण्डल शान्त, स्मित एवं गम्भीर है, प्रसन्नता फूटी पड़ रही है। नेत्र विकसित हैं। अंग-प्रत्यंग स्वाभाविक एवं सुपुष्ट हैं। दक्षिण कर में शृंगार है, वाम कर में पिटारी है, जिसमें से पुष्पमाला का कुछ अंश बाहर दीख रहा है। सम्भवतः यह एक प्रसाधिका की मूर्ति है। मूर्ति के पीछे के स्तम्भ पर चार सिंह नारियाँ बनी हैं। ऊपर एक कटोरा बना है। सम्भवतः यह अलंकरण मूर्ति है।[1]

मथुरा शैली का अध्ययन पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भागों में किया जाता है। पूर्वार्द्ध शैली की प्रतिमाएँ भरहुत की भाँति अनगढ़ हैं, किन्तु उत्तरार्द्ध की प्रतिमाएँ पर्याप्त परिष्कृत हैं, उनमें सादगी और जीवन है। इस शैली में गान्धार कला की ही भाँति **भगवान बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाओं का निर्माण** हुआ है। बुद्ध की इन मूर्तियों के निर्माण से भारतीय कला में युगान्तकारी परिवर्तन हुआ, परिणामतः शताब्दियों तक बुद्ध एवं भगवान के अन्य अवतारों की मूर्तियाँ कोरी जाती रहीं। बुद्ध की इन मूर्तियों में विशेषकर उनके जन्म की घटना, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण की घटना का अङ्कन हुआ है।

गान्धार एवं मथुरा शैली का पारस्परिक भेद

अनेक विद्वानों ने मथुरा-कला को गान्धार-कला की अनुकृति सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि मथुरा और गान्धार दोनों ही शैलियों में बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण स्वतन्त्र रूप में हुआ है। इन दोनों शैलियों में निर्मित प्रतिमाओं में मौलिक अन्तर है—जहाँ **गान्धार-शैली** में अंग सौष्ठव की सूक्ष्मता और भौतिक सौन्दर्याङ्कन को महत्त्व प्रदान किया गया है, वहाँ मथुरा शैली में मूर्तियों पर दीप्ति और आध्यात्मिक अभिव्यंजना का महत्त्व स्पष्ट है। इस प्रकार प्रथम शैली यथार्थवादी शैली थी और द्वितीय आदर्शवादी। प्रथम यूनानी शैली का कलागत आदर्श, प्राकृतिक सजीव अनुकरण और बाह्य सौन्दर्याङ्कन का था, किन्तु भारतीय शैली का कलागत आदर्श प्रतीकवाद तथा भावनावाद था। श्री सत्यकेतु विद्यालङ्कार इन दोनों शैलियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखते हैं कि "मथुरा की कला पर गान्धार-शैली का प्रभाव अवश्य है, पर उसे पूर्णतया गान्धार-शैली की नकल नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं, कि मथुरा के आर्य-शिल्पियों ने पेशावर की रचनाओं को दृष्टि में रखकर एक मौलिक-शैली का विकास किया था, जो बाह्य और आभ्यन्तर दोनों दृष्टियों से शुद्ध आर्य-प्रतिभा की प्रतीक थी। भारतीय-कल्पना में एक परम योगी के मुख पर जो दैवी भावना होनी चाहिए, उसकी वृत्ति किस प्रकार

अन्तर्मुखी होनी चाहिए और उपासक के हृदय में अपने उपास्यदेव का कैसा लोकोत्तर रूप होना चाहिए—इन सबको पत्थर की मूर्ति में उतारकर मथुरा के ये शिल्पी चिर यश के भागी हुए हैं।"[1] मथुरा कला गान्धार-कला से प्रभावित है, इस मत का खण्डन करते हुए राबिन्सन लिखते हैं कि उसी समय समकालीन कला का एक विशुद्ध देशी सम्प्रदाय, जिसका भरहुत और साँची से उद्भव हुआ था, मथुरा, भीटा, बेसनगर तथा अन्य केन्द्रों में प्रचलित था। पहले यह प्रवृत्ति थी कि बुद्ध, महावीर और हिन्दू देवताओं की मूर्तिनिर्माण के आविष्कार को विदेशी प्रभावों के कारण बताया जाता था, परन्तु अब सामान्यतया इस बात पर विद्वान सहमत हैं कि इसका उद्भव मथुरा के देशी कलाकारों के द्वारा खोजा जाना चाहिए, न कि गान्धार के।[2]

राबिन्सन के इस मत का समर्थन क्रिस्टमस हम्फ्रीस के कथन से भी होता है। वे लिखते हैं कि अर्वाचीन विचार यह है कि प्राचीनतम बुद्ध की प्रतिमा मथुरा-स्कूल की है, वह गान्धार-कला से पूर्ववर्ती है, परवर्त्ती काल में वे समानान्तर रूप से चली हैं। मथुरा-कला निःसन्देह स्वतंत्र रूप से भारतीय कला का आदर्श प्रस्तुत करती है।[3]

मथुरा एवं गान्धार शैली में निर्मित बुद्ध की मूर्तियों में पर्याप्त अन्तर है। मथुरा से प्राप्त 'कटरा बुद्ध' की मूर्ति लाल बलुए पत्थर से निर्मित है। यह मूर्ति प्राचीनतम बुद्ध मूर्ति है। गांधार में निर्मित बुद्ध मूर्ति सुन्दर केश-विन्यास से अलंकृत है जबकि मथुरा से प्राप्त मूर्ति का सिर घुटा हुआ है। गांधार शैली से प्राप्त बुद्ध-मूर्ति ग्रीक राजकुमार की प्रतीत होती है। जबकि मथुरा से प्राप्त बुद्ध मूर्ति पूर्णतया भारतीय संन्यासी की मूर्ति है। गांधार की बुद्ध मूर्ति कुशलता से निरूपित है, सूक्ष्म परिधान से सज्जित है जबकि मथुरा की मूर्ति वस्त्र रहित है।

अन्य विद्वानों ने भी मथुरा कला को गान्धार कला के प्रभाव से दूर बताया है। इन विद्वानों में हम्फ्रीस तथा डा० नीहार रंजन रे प्रमुख हैं। डा० क्रामरिश भी इस मत से सहमत नहीं हैं। फोगेल का कथन है कि— "मथुरा की कला में भाव की कल्पना तथा अलंकरण की रीति सर्वथा भारतीय है।" किन्तु वे गान्धार कला का कुछ प्रभाव भी स्वीकार करते हुए कहते हैं कि—"इस पर एक ओर तो भरहुत तथा सांची की प्राचीन शैली का प्रभाव है तो दूसरी ओर गान्धार कला का भी अल्प प्रभाव है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि मथुरा कला का उदय सर्वथा स्वदेशी है और विकास भी भारतीय कला के आदर्शों पर हुआ है किन्तु बाद में गान्धार कला के कुछ अंशों का इस पर प्रभाव भी पड़ा है।" जहाँ मथुरा कला गान्धार कला से पूर्ववर्त्ती तथा मौलिक है, वहीं उसका उदय भरहुत और सांची कला से हुआ है किन्तु भरहुत और सांची से विकसित होने पर भी शैली की दृष्टि से नितान्त भिन्न है। इसके सम्बन्ध में श्री नाहर ने लिखा है—

"सांची और भरहुत की कलाकृतियों में एक प्रकार की सूक्ष्म प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता का आभास मिलता है जिसका मथुरा की कला में एकान्त अभाव है। वृक्षलतादिक गुल्मों के मध्य स्थित या खड़ी हुई नारी प्रतिमाओं में, सांची और भरहुत की कला शैली में, हमें उन्नत उरोजों और विकसित नितम्बों को देखकर प्रकृति की उर्वरता का आभास प्राप्त होता है। इन सांची और भरहुत की यक्षिणी-मूर्तियों और स्थापत्य चित्रों से हमें यह अवश्य विदित होता है कि इनका निर्माण करने वाले कलाकारों का जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं था और प्रकृति तथा मानव-शरीर के प्रति उनका दृढ़ अनुराग था परन्तु इनमें इन्द्रियपरकता की बू नहीं आती। उनकी ध्वन्यात्मकता और अभिव्यक्ति मानसिक है; शारीरिक नहीं। मनुष्य के इहलोकपरक जीवन का चित्रण करते हुए भी वे दर्शकों को मानसिक और आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करते हैं। परन्तु मथुरा की कला इस बात में भरहुत और सांची से भिन्न है। इस कला-शैली में हमें स्वतः स्फूर्ति (Spontaneity) के अभाव और कुछ कृत्रिमता के दर्शन होते हैं। इसमें इन्द्रियपरकता भी काफी अधिक है। मथुरा की यक्षिणियों की प्रतिमाएँ हमारे चित्त पर प्रभाव कम डालती हैं, हमारी इन्द्रियों को वे अवश्य आंदोलित करती हैं। मथुरा के कलाकार का उद्देश्य, मालूम पड़ता है, इन्द्रिय-परकता और कामुकता से परिपूर्ण था।[1] मथुरा की यक्षिणी मूर्तियों के सम्बन्ध में डा० नीहार रंजन रे ने लिखा है—शुंग एवं कुषाण युग की मृण्मूर्तियों के विषय एवं उसके निर्वाह में एक निकट सम्बन्ध का बोध होता है और एक वंश परम्परानुकूल सम्बन्ध भरहुत की यक्ष एवं यक्षिणी, बोधगया और सांची की कला में भी समान रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु जो स्वतः स्फूर्ति और सहजता प्राचीन कला में थी अब उसके स्थान पर कृत्रिमता, ऐन्द्रियता है, और जो प्रतीकात्मकता या संकेतात्मकता

मथुरा-कला में बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखने वाली हजारों मूर्तियों का निर्माण हुआ। मथुरा-शैली की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्हें संक्षेप में हम इस प्रकार देख सकते हैं—

(१) मथुरा-शैली में लाल पत्थर का प्रयोग किया गया है। यह पत्थर सफेद चित्ती वाला रवादार पत्थर है जो कि भरतपुर तथा सीकरी में अधिक होता है।

(२) गान्धार-शैली में बुद्ध पद्मासन तथा कमलासनासीन हैं किन्तु मथुरा शैली में वे सिंहासनासीन हैं। खड़ी मूर्तियों के पैरों के नीचे सिंह की आकृति बनी रहती है।

(३) मथुरा-शैली में आर्य-प्रतिभा ने मुख-मण्डल पर दैवी भावना, आभा का स्पष्ट प्रदर्शन किया है। शिल्पकार आध्यात्मिक अभिव्यंजना के अंकन में भी सफल हुए हैं।

(४) मूर्ति के शरीर का धड़ भाग नग्न है, दक्षिण कर वस्त्रहीन अभयमुद्रा में है। प्रतिभाओं के वस्त्र सलवटों (Folding) से युक्त हैं।

(५) यह शैली यथार्थ की अपेक्षा आदर्श, प्रतीक तथा भावनावादी है।

(६) मथुरा शैली की कुषाण कालीन बौद्ध मूर्तियों की घनगात्रता तथा विशालता प्रसिद्ध है।

(७) इस युग की मूर्तियों की बनावट गोल तथा पृष्ठावलम्बन रहित है। इन प्रतिमाओं का मस्तक मण्डित है, गुप्तकाल की भाँति कुंचित केश नहीं हैं। मूछों का अभाव है, मस्तक पर ऊर्णा रहती है।